**ओ३म्**

**‘महर्षि दयानंद एवं गुरुकुल शिक्षा प्रणाली’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 महर्षि दयानन्द सरस्वती (1825-1883) ने प्रज्ञाचक्षु दण्डी गुरू स्वामी विरजानन्द सरस्वती, मथुरा से वैदिक आर्ष व्याकरण एवं वैदिक शास्त्रों का अध्ययन कर देश व संसार से अविद्या हटाने के लिए ईश्वरीय ज्ञान वेदों का प्रचार किया। उनके वेद प्रचार आन्दोलन का देश और समाज पर ही नहीं अपितु विश्व पर व्यापक प्रभाव पड़ा। वह महाभारतकाल के बाद वेदों व वैदिक साहित्य के अपूर्व विद्वान, ऋषि, आप्त पुरूष, वेदों के सत्य अर्थ करने वाले वेदभाष्यकार व शास्त्रकार थे। उन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा से सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय, पंचमहायज्ञविधि, गोकरूणानिधि, व्यवहारभानु आदि अनेक ग्रन्थ प्रदान किये जो मानव जीवन की सच्ची उन्नति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं सहायक हैं। उनके व आर्यसमाज के प्रयासों से संसार में अविद्या व अज्ञानान्धकार में काफी कमी आई है परन्तु लक्ष्य अभी कोसों दूर है। वह अपनी उन्नत आर्ष प्रज्ञा के आधार पर संसार के सभी मत-मतान्तरों को वैदिक मान्यताओं व सिद्धान्तों का सत्यासत्य मिश्रित परिवर्तित रूप मानते थे। उनका विश्वास था कि सभी मतों के विद्वानों द्वारा वैदिक सिद्धान्तों व मान्यताओं को जान व समझ लेने पर उन्हें एक वैदिक मत पर स्थिर व सहमत किया जा सकता है। यह बात इसलिए भी सम्भव है कि सृष्टि के आरम्भ से महाभारतकाल के 1 अरब 96 करोड़ 8 लाख 48 हजार वर्षों तक सारे विश्व में एकमात्र वैदिक मत सुस्थापित व सुसंचालित रहा जिससे संसार में सुख व शान्ति स्थापित थी। **मत व सम्प्रदायों की उत्पत्ति का कारण अज्ञान व अविद्या होती है। अज्ञान व अविद्या के दूर होने पर मनुष्य सत्य मत को प्राप्त होता है। वह सत्य मत संसार में एक ही हो सकता है जो अतीत में वैदिक मत ही था और संसार का भविष्य का सत्य मत भी यही वैदिक मत होगा।**

 महर्षि दयानन्द का ध्यान शिक्षा पद्धति की ओर भी गया था। उनके समय में लार्ड मैकाले द्वारा प्रवर्तित विदेशी राज्य की संपोषक अंग्रेजी भाषा का ज्ञान कराने वाली तथा अंग्रेजों के नौकर तैयार करने वाली पद्धति प्रचलित थी। यह पद्धति एकांगी व अधूरी शिक्षा पद्धति थी। इसे पढ़कर ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति का सत्य-सत्य ज्ञान प्राप्त नहीं होता था तथा आज भी नहीं होता। शिक्षा, विद्या व ज्ञान वह होता है जिससे मनुष्य को अपनी आत्मा, संसार के रचयिता परमात्मा व सृष्टि का सत्य-सत्य ज्ञान प्राप्त हो जिससे वह कृषि, राज्यरक्षा, न्याय व्यवस्था, चिकित्सा, शिल्प व प्रबन्धन आदि कार्यों के संचालन व उन्नति में सक्षम हो सके। इन लक्ष्यों को प्राप्त कराने वाली शिक्षा पद्धति महाभारतकाल व पूर्व में गुरूकुल शिक्षा प्रणाली ही रही है। अतः उन्होंने संस्कृत प्रधान गुरूकुलीय शिक्षा प्रणाली का महत्व प्रतिपादित किया। यही एक ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा अध्ययन कर मनुष्य परा व अपरा विद्या सहित अध्यात्म व सांसारिक सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस सर्वांगीण शिक्षा प्रणाली का समर्थन महर्षि दयानन्द ने किया और इसकी रूपरेखा भी अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में प्रस्तुत की। यहां यह जानना भी आवश्यक है कि महर्षि दयानन्द वेदों को सब सत्य विद्याओं की पुस्तक मानते थे। वह संस्कृत भाषा व आर्य भाषा हिन्दी के ज्ञान के आग्रही अवश्य थे परन्तु विरोधी वह देश व संसार की किसी भाषा के नहीं थे। उनका मानना था कि देशवासी संस्कृत और हिन्दी का यथोचित ज्ञान करने के पश्चात अन्य किसी एक व अधिकाधिक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करें तो कर सकते हैं। यही देश हित में भी है। विश्व में सर्वत्र धर्म व संस्कृति सहित ज्ञान व विज्ञान के प्रचार के लिए अन्यदेशीय भाषाओं का ज्ञान अत्यावश्यक व अपरिहार्य है, यह तथ्य वह भलीभांति जानते थे और इससे उनका असहमत व विरोध होने का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। महर्षि दयानन्द का जीवन अत्यन्त व्यस्त जीवन था। उन्होंने 10 अप्रैल, सन् 1875 को मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना की थी तथा 30 अक्तूबर, 1883 को विरोधियों द्वारा विषपान कराये जाने से उनका देहावसान हुआ। इन साढ़े आठ वर्षों की न्यून अवधि में उन्होंने धर्म व संस्कृति के प्रचार-प्रसार सहित क्रान्तिकारी व्यापक व अपूर्व समाज सुधार कर देश की आजादी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। **वस्तुतः स्वतन्त्रता व स्वराज्य के मन्त्रदाता महर्षि दयानन्द ही थे। कुछ समकालीन एवं परवर्ती देश-भक्तों द्वारा उनके विचारों का अनुसरण कर ही देश विदेशी दासता से मुक्त हुआ। यदि महर्षि दयानन्द कुछ और समय तक जीवित रहते तो शिक्षा जगत में अपूर्व कार्य करते, यह सुनिश्चित है।**

 **महर्षि दयानन्द द्वारा प्रवर्तित गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली वैदिक धर्म, संस्कृति व वैदिक विद्याओं की उद्धारक, पोषक, रक्षक व प्रचारक है। यह शिक्षा प्रणाली प्राचीनतम एवं शुभ परिणामदायक होने से विश्व वन्दनीय है। इसके महत्व के कारण इस शिक्षा पद्धति से दीक्षित मनुष्य व ब्रह्मचारी ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुरूप बनता है। मर्यादा पुरूषोत्तम राम, योगश्वर कृष्ण, सभी ऋषि-मुनि व महर्षि दयानन्द इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। गुरूकुल का ब्रह्मचारी ईश्वरोपासनार्थ सन्ध्या व अग्निहोत्र यज्ञ आदि का जो अनुष्ठान करता है वह ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव को अपने जीवन में धारण करने की प्रक्रिया का ही नाम है। अन्य किसी मत में ऐसा नहीं है। इसलिये गुरूकुलीय शिक्षा प्रणाली संसार की सभी शिक्षा प्रणालियों में सर्वश्रेष्ठ है।** गुरूकुल शिक्षा की इस विशेषता के कारण ही हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों व महर्षि दयानन्द ने इस शिक्षा पद्धति को वरीयता दी। इनके बाद श्री जयदेव विद्यालंकार, पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार, पं. क्षेमकरण दास त्रिवेदी, पं. तुलसीराम स्वामी, स्वामी ब्रह्ममुनि, पं. आर्यमुनि, पं. शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ, पं. विश्वनाथ विद्यालंकार और डा. रामनाथ वेदालंकार आदि अनेक वेदभाष्यकार इसी शिक्षा पद्धति की देन हैं। इस शिक्षा पद्धति के पोषकों में महर्षि दयानन्द के प्रमुख अनुयायियों में हम स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, पं. गुरूदत्त विद्याथी, रक्तसाक्षी पं. लेखराम, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, पं. युधिष्ठिर मीमांसक, पं. जगदेव सिंह सिद्धान्ती, स्वामी ओमानन्द सरस्वती, स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती, डा. प्रज्ञा देवी, मेधा देवी, डा. सूर्यादेवी विद्यालंकृता, डा. नन्दिता शास्त्री आदि को भी सम्मिलित कर सकते हैं जिन्होंने गुरूकुल शिक्षा प्रणाली का प्रचार-प्रसार व संचालन कर उसे यश व सफलता प्रदान की है। महर्षि दयानन्द ने गुरूकुल शिक्षा प्रणाली से यह अपेक्षा की थी कि इससे अष्टाध्यायी-महाभाष्य-निरूक्त आर्ष व्याकरण प्रणाली समृद्ध होगी जिससे वैदिक धर्म, संस्कृति, वैदिक विद्याओं के पोषक, उद्धारक, रक्षक व प्रचारक मिलेंगे जो ईश्वराज्ञा **‘कृण्वन्तो विश्वमार्यम्’** को पूरा करने में सहयोगी होंगे। महर्षि दयानन्द और वर्तमान में गुरूकुलों के संचालक स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी की यह अपेक्षा पूर्णतः फलीभूत नहीं हो रही है। अतः यह एक विचारणीय प्रश्न बन गया है।

 सम्प्रति आर्यसमाज के विद्वानों व संन्यासियों द्वारा देश भर में अनेक गुरुकुल चलाये जा रहे हैं। यहां प्रतिभाशाली ब्रह्मचारी अध्ययन करते हैं जो शिक्षा पूरी कर वेदों के प्रचार व प्रसार को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य न चुनकर सरकारी महाविद्यालयों आदि में अध्यापन व अन्य कार्यों को चुनते हैं। इनमें से बहुत ही कम ऐसे होते हैं जो अपने निजी समय में व्यवसाय के अतिरिक्त आर्यसमाज के कार्यों को वरीयता देते हैं। इससे उन्हें तैयार करने में आर्यसमाज, गुरूकुल के आचार्य व प्रबन्धक आदि जिस स्वप्न को लेकर तप व पुरूषार्थ करते हैं, उसके आशानुरूप सफल न होने से उन्हें उत्साह मिलने की अपेक्षा निराशा मिलती है। होना तो यह चाहिये कि गुरूकुल में दीक्षित सभी स्नातकों व अन्य उच्च योग्यता प्राप्त ब्रह्मचारियों को उचित वेतन व सुख सुविधाओं सहित आर्यसमाज में ही सेवा करने का अवसर मिलना चाहिये परन्तु यह हो नहीं पाता। इससे गुरुकुल के संचालकों को निराशा ही मिलती है।

 हमारे सामने पं. वेद प्रकाश श्रोत्रिय, डा. ज्वलन्त कुमार शास्त्री, डा. रघुवीर वेदालंकार, डा. सोमदेव शास्त्री, डा. वेदपाल जी आदि के उदाहरण हैं जो गुरूकुल शिक्षा पद्धति से दीक्षित हंै और आर्यसमाज के उपदेशक व विद्वान के रूप में अपनी सेवायें प्रदान कर रहे हैं। डा. ज्वलन्त कुमार शास्त्री एवं डा. रघुवीर वेदालंकार ने तो साहित्य सृजन व लेखन के क्षेत्र में भी अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। ऐसे और भी अनेक विद्वान हैं जिनसे आर्यसमाज लाभान्वित हैं। अतः गुरूकुल के स्नातक विद्वानों से स्वाभाविक रूप से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने व्यवसाय से बचे अपने निजी समय को डा. ज्वलन्तकुमार शास्त्री तथा उन जैसे जीवित व दिवंगत विद्वानों की तरह आर्यसमाज व वैदिकधर्म की सेवा में लगायें जिससे वैदिक धर्म की बगिया हरी-भरी रहे और वह ऋषि और आर्यसमाज के ऋण से उऋण हो सकें। जो लोग ऐसा कर रहे हैं वह प्रशंसा के पात्र हैं। हमें लगता है कि आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार की धीमी गति का एक मुख्य कारण गुरूकुल के स्नातकों का अपने जीवन में वैदिक धर्म की सेवा के लिए पर्याप्त समय न देना भी है। हम यह भी उचित समझते हैं कि गुरूकुल के स्नातक चाहे जो भी व्यवसाय कर रहे हों, उन्हें अपनी आय का 5 से 10 प्रतिशत भाग मासिक रूप से गुरूकुल के बैंक खाते में जमा करना चाहिये। गुरूकुलों के दीक्षा समारोहों में जब स्नातकों को उपाधियां वितरित की जायें, उस अवसर अथवा वेदारम्भ संस्कार के ही अवसर पर इस आशय की प्रतिज्ञा कराई जा सकती है। यह एक प्रकार की इन ब्रह्मचारियों की अपने गुरूकुल के प्रति गुरू दक्षिणा होगी जिससे वह गुरूकुल के ऋण से उऋण हो सकते हैं। गुरूकुल को भी ऐसे अपने पूर्व स्नातकों को प्रबन्ध समिति में सम्मिलित करना चाहिये और उन्हें गुरूकुल की त्रैमासिक प्रगति रिर्पाट आदि भेजते रहना चाहिये। जो सुझाव उनसे मिलें, उसे प्रबन्ध समिति विचार कर उचित निर्णय करे। ऐसा होने पर गुरूकुल की आर्थिक स्थिति सुदृण हो सकती है और गुरूकुलीय शिक्षा का अत्यधिक प्रसार हो सकता है। इसके साथ आर्यसमाज के अधिकारियों को भी गुरूकुलों के स्नातकों की समस्याओं पर ध्यान देना होगा। उन्हें अपने पुरोहितों को उचित वेतन के साथ यथोचित सम्मान व उनकी सुविधाओं का भी ध्यान रखना चाहिये। यह देवपूजा के अन्तर्गत आता है। यदि इसमें कहीं कुछ कमी व त्रुटि होगी तो योग्य पुरोहित नहीं मिलेंगे। हम आशा करते हैं कि आर्यसमाज के विद्वान, नेता, गुरूकुल के संचालक व स्नातकगण सभी इस पर विषय पर व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से विचार करेंगे और उचित निर्णय कर वैदिक धर्म और आर्यसमाज के कार्य को प्रभावशाली रूप से बढ़ायेगें।

 हम यह समझते हैं कि समाज में योग्यता, स्वार्थ त्याग व निर्लोभी स्वभाव की भावना का ही सम्मान होता है। गुरूकुल के ब्रह्मचारियों में ऐसे संस्कार भरे जाने चाहियें। इस उद्देश्य की पूर्ति होने पर वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में तीव्रता आ सकती है।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**